राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 20864/2013

मो. सलीम पुत्र मो. अली, उम्र लगभग 36 वर्ष, निवासी सी-36, राणा कॉलोनी, नाहरी का नाका, शास्त्री नगर, जयपुर

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राज्य-प्रधान सचिव, गृह विभाग, राजस्थान सरकार, सचिवालय, जयपुर के माध्यम से
2. महानिदेशक पुलिस, पुलिस मुख्यालय, राजस्थान, जयपुर
3. पुलिस अधीक्षक, मुख्यालय, जयपुर

----प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता (गण) की ओर से	:	श्री शोभित तिवारी श्री गौरव शर्मा
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	श्री रूपिन काला, जी.सी. के लिए श्री पी.एस. नरुका

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंढ

आदेश सुरक्षित करने की तिथि : 15/02/2023

आदेश उच्चारित करने की तिथि : 24/02/2023

रिपोर्टेबल

आदेश

(1) याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ याचिका दायर की गई है:-

> "(i) दिनांक 03.6.2010 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाए और याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ कांस्टेबल के पद पर सेवा में बहाल किया जाए;
>
> (ii) कोई अन्य आदेश या निर्देश जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उपयुक्त और उचित समझा जाए, याचिकाकर्ता के पक्ष में भी पारित किया जाए।
>
> (iii) इस रिट याचिका की लागत भी याचिकाकर्ता के पक्ष में दी जाए।

(2) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वर्ष 1996 में प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी विज्ञापन के अनुसार, याचिकाकर्ता ने कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया में भाग लिया।

(3) अधिवक्ता का कहना है कि आवेदन-पत्र जमा करने के समय याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आपराधिक मामला लंबित नहीं था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के चयन के बाद, जब पुलिस सत्यापन के लिए आवेदन-पत्र याचिकाकर्ता को दिया गया, तो उसने अपने खिलाफ एक आपराधिक मामला लंबित होने के संबंध में एक तथ्य का खुलासा किया। अधिवक्ता का कहना है कि परिपत्र दिनांक 29.4.1995 के अनुसरण में किसी भी ऐसे चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति नहीं दी गई, जिसके खिलाफ आपराधिक मामले लंबित थे। अधिवक्ता का कहना है कि बाद में उपरोक्त परिपत्र को प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 27.7.2001 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया और ऐसे चयनित उम्मीदवारों को एक बार छूट दी गई जिनके खिलाफ आपराधिक मामले लंबित थे। अधिवक्ता का कहना है कि दिनांक 27.7.2001 के आदेश पारित होने के बाद नियुक्ति देने के लिए 114 अभ्यर्थियों की सूची तैयार की गई थी। अधिवक्ता का कहना है कि दिनांक 27.7.2001 के आदेश जारी होने से पहले, याचिकाकर्ता ने खंडपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3364/1998 दायर की और उसे दिनांक 10.12.1998 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को कांस्टेबल के पद पर नियुक्त करने का निर्देश जारी किया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त आदेश के खिलाफ, प्रत्यर्थीगण ने खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 515/1999 दायर की और उसे दिनांक 9.7.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 22.11.2002 के आदेश के तहत नियुक्ति की पेशकश की गई थी और अचानक, याचिकाकर्ता को कोई नोटिस दिए बिना, प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 3.6.2010 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को 26.5.2000 के निर्णय के तहत आपराधिक मामले में पहले ही बरी कर दिया गया है। अधिवक्ता का कहना है कि एक बार याचिकाकर्ता को नियुक्ति दे दी गई, तो उसे एक निहित अधिकार मिल गया है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करके प्रत्यर्थीगण द्वारा उक्त अधिकार को छीना नहीं जा सकता है।

अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसरण में नियुक्ति की पेशकश नहीं की गई थी, बल्कि याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थीगण द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय के आधार पर नियुक्ति की पेशकश की गई थी, जिसके द्वारा उन उम्मीदवारों को छूट दी गई थी जिनके खिलाफ एक आपराधिक मामला लंबित था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं/नियुक्ति राज्य के प्रत्यर्थीगण द्वारा एकल और पारित आदेशों के खिलाफ दायर सिविल अपील संख्या 782/2004 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 10.12.2009 के आधार पर रद्द कर दी गई है। अधिवक्ता का कहना है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अनुचित है और माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आधार पर याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त नहीं की जा सकती हैं। अधिवक्ता का कहना है कि जब समान स्थिति वाले 113 अभ्यर्थियों को नियुक्ति दी गई है, जिनके खिलाफ भी आपराधिक मामला लंबित था और उन्हें छूट दी गई थी, तो याचिकाकर्ता के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए था। निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा करते हुए, अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक है:-

(i) प्रमोद सिंह किरार बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य [2022 की सिविल अपील संख्या 8934-8935 पर 2.12.2022 को निर्णय लिया गया]
(ii) अवतार सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य (2016) 8 एससीसी 471
(iii) भारत संघ और अन्य बनाम मेथु मेडा (2022) 1 एससीसी 1
(iv) मध्य प्रदेश राज्य बनाम बंटी (2019) 6 स्केल 458
(v) मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अभिजीत सिंह पवार (2018) 18 एससीसी 733
(vi) पवन कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य [सिविल अपील संख्याएं] 2022 का 3574 2.5.2022 को तय हुआ]

विकल्प के रूप में, अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के पक्ष में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है, क्योंकि उसे 17 सितंबर, 2019 से कांस्टेबल के पद पर काम करने की अनुमति दी गई थी। 22.11.2002 से 3.6.2010 तक और अचानक 3.6.2010 को उनकी नियुक्ति रद्द कर दी गई और अब याचिकाकर्ता की उम्र अधिक हो गई है और उनके पास किसी अन्य चयन प्रक्रिया में भाग लेने का कोई अन्य अवसर नहीं है, इसलिए उन्हें कांस्टेबल के पद पर जारी रखने की अनुमति दी जाए।

(4) इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और कहा कि शुरुआत में, 29.4.1995 के परिपत्र के कारण याचिकाकर्ता का प्रस्ताव नहीं किया दिया गया था। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में खंडपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3364/1998 दायर की और इसकी अनुमति 10.12.1998 को दी गई, जिसके विरुद्ध राज्य के प्रत्यर्थीगण ने खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 515/1999 को दायर की और इसे इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 9.7.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त आदेशों के खिलाफ, राज्य ने माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील संख्या 782/2004 प्रस्तुत की, लेकिन राज्य के प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अपील के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक 22.11.2002 द्वारा नियुक्ति दी गई। अधिवक्ता का कहना है कि जब राज्य के प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर सिविल अपील को माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 10.12.2009 के आदेश के माध्यम से अनुमति दी थी, तो याचिकाकर्ता की नियुक्ति माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में दिनांक 3.6.2010 को रद्द कर दी गई थी। अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में रद्द कर दी गई है, इसलिए दिनांक 3.6.2010 के आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। लक्ष्मण चौधरी बनाम राज्य एवं अन्य [खंडपीठ" सिविल रिट याचिका संख्या 2757/2019, 31.3.2022 को निर्णित पर भरोसा करते हुए अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(5) बार में दी गई दलीलों को सुना और उन पर विचार किया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

(6) यह तथ्य विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता और उसके समान स्थिति वाले 114 व्यक्तियों ने कांस्टेबल पद पर नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया में भाग लिया था। यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि 29.4.1995 के परिपत्र के कारण उन सभी उम्मीदवारों को नियुक्ति का प्रस्ताव नहीं दिया गया था, जिसने स्पष्ट रूप से उन चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति देने से रोक दिया था जिनके खिलाफ आपराधिक मामले लंबित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को छोड़कर, बाकी 113 उम्मीदवारों ने कोई रिट याचिका दायर करके इस

न्यायालय से संपर्क नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल याचिकाकर्ता ने खंडपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 3364/1998 दाखिल करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और दिनांक 10.12.1998 के आदेश द्वारा इसकी अनुमति दी गई थी। राज्य के प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 10.12.1998 के उपरोक्त आदेश को खंडपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) संख्या 515/1999 दायर करके इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष चुनौती दी। और इसे डिवीजन बेंच ने दिनांक 9.7.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त आदेश के विरुद्ध, राज्य के प्रत्यर्थीगण ने भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील संख्या 782/2004 प्रस्तुत की और वह अपील 10.12.2009 तक माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित रही। माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उक्त अपील के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 22.11.2002 के आदेश द्वारा नियुक्ति दी गई थी, हालांकि याचिकाकर्ता के नियुक्ति आदेश में लंबित अपील का संदर्भ नहीं था।

(7) यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा 114 उम्मीदवारों की एक सूची तैयार की गई थी जिसमें आपराधिक मामलों की स्थिति का उल्लेख किया गया था। क्रम संख्या पर याचिकाकर्ता का नाम था। 79 और याचिकाकर्ता के नाम के सामने एक पृष्ठांकन किया गया कि राज्य ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपील दायर की है। मामले के उपरोक्त पहलू को देखते हुए याचिकाकर्ता को 22.11.2002 को नियुक्ति दी गई। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील का निपटारा होने तक याचिकाकर्ता सेवा में बना रहा। माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 10.12.2009 के आदेश के तहत इस न्यायालय की एकल पीठ और खंडपीठ द्वारा पारित आदेशों को इस प्रकार देखते हुए रद्द कर दिया है: -

> "पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।
>
> यह अपील राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर खंडपीठ की खंडपीठ के आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 9.7.2001 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील खारिज कर दी गई है और विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश को कायम रखा।
>
> ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने कांस्टेबल के पद के लिए आवेदन किया था लेकिन उसका चयन दिनांक 4.3.1998 के आदेश द्वारा इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उसकी उम्मीदवारी पुलिस महानिदेशक राजस्थान के कार्यालय द्वारा जारी ज्ञापन दिनांक 29.4.1995

के विपरीत थी। उपरोक्त ज्ञापन में कहा गया है कि यदि कोई उम्मीदवार हिंसा के अपराध में शामिल है जिसमें आईपीसी की धारा 323 शामिल है तो वह पुलिस सेवा के लिए पात्र नहीं है। हालाँकि, उसमें यह भी कहा गया है कि यदि मुकदमे के बाद अभ्यर्थी बाइज्जत बरी हो जाता है तो नियुक्ति प्राधिकारी से अगले उच्च अधिकारी की मंजूरी लेकर अभ्यर्थी को पुलिस में भर्ती के लिए विचार किया जा सकता है।

इस मामले में हमने सीआरएल में ट्रायल कोर्ट केस संख्या 607/1999 का निर्णय देखा है और पाया गया कि प्रत्यर्थी को सम्मानपूर्वक बरी नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समझौता हुआ और कुछ गवाह मुकर गए। घायल गवाह ताहिर अली को विश्वसनीय नहीं माना गया। हमारी राय में इसका मतलब यह है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया गया था, न कि उसे सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया था।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धर्मपाल बनाम के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ राजस्थान राज्य आरएलडब्ल्यू 2000(2) 815 ने उक्त ज्ञापन दिनांक 29.14.1995 को रद्द कर दिया है। हम सम्मानपूर्वक उच्च न्यायालय के पूर्वोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय से सहमत नहीं हैं और मानते हैं कि दिनांक 29.4.1995 का उक्त ज्ञापन पूरी तरह से वैध है क्योंकि हमारी यह भी राय है कि जो व्यक्ति किसी आपराधिक अपराध में शामिल है, उसे निश्चित रूप से पुलिस सेवा में शामिल नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त कारणों से, हम खंडपीठ और विद्वान एकलपीठ के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करते हैं और इस अपील को स्वीकार करते हैं। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं।"

(8) माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय पारित करने के तुरंत बाद, प्रत्यर्थीगण ने आदेश पारित किया है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति 3.6.2010 को रद्द कर दी गई है। अत: यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आधार पर रद्द कर दी गई थी।

(9) यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि जब याचिकाकर्ता की सेवाएं सिविल अपील संख्या 782/2004 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर समाप्त कर दी गई हैं तो इस न्यायालय द्वारा न्यायिक अनुशासन और न्यायिक मर्यादा का पालन किया जाना चाहिए।

(10) इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क में कोई दम नहीं दिखता कि याचिकाकर्ता के खिलाफ राज्य द्वारा दायर सिविल अपील में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय गलत है और आदेश का पालन करने के समान है। इसलिए

यह बाध्यकारी नहीं है और प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के नियुक्ति आदेश को रद्द करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। कानून का यह स्थापित प्रस्ताव है कि न्यायिक औचित्य की मांग है कि देश का उच्चतम न्यायालय होने के नाते, यहां तक कि माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश को भी बाध्यकारी माना जाना चाहिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने केरल राज्य बनाम वासुदेवन नायर 1997 सीआर.एल.जे. के मामले में 97, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

> "...न्यायिक औचित्य, गरिमा और मर्यादा की मांग है कि देश में उच्चतम न्यायिक न्यायाधिकरण होने के नाते उच्चतम न्यायालय के आदेश को भी बाध्यकारी माना जाना चाहिए। उस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा का सम्मान किया जाना चाहिए, भले ही वह केवल वैसे ही हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उस न्यायालय के निर्णय में शामिल प्रत्येक बयान अनुच्छेद 141 द्वारा आकर्षित किया जाएगा। कानून के अलावा अन्य मामलों पर बयानों में कोई बाध्यकारी बल नहीं है...।"

(11) ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मीना वरियाल (2007) 5 एससीसी 428, में माननीय उच्चतम न्यायालय ने देखा है कि उच्चतम न्यायालय का एक आदेश उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त (2019) एससीसी ऑनलाइन 851 के मामले में भी यही विचार व्यक्त किया गया है कि *"...उच्चतम न्यायालय द्वारा एक घोषणा, यहां तक कि वह भी नहीं कर सकता इसे कड़ाई से निर्णय का अनुपात निर्णय कहा जाएगा, जो निश्चित रूप से उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी होगा..."*/ सुगंती सुरेश कुमार बनाम जगदीशन (2002) 2 एससीसी 420 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार व्यवस्था दी है:-

> "उच्च न्यायालय के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णय को इस आधार पर खारिज करना अस्वीकार्य है कि उच्चतम न्यायालय ने किसी अन्य बिंदु पर विचार किए बिना कानूनी स्थिति निर्धारित की है। यह न केवल भारत में उच्च न्यायालयों के लिए अनुशासन का मामला है, बल्कि यह अनुच्छेद 141 में दिए गए संविधान का आदेश है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होगा। इस न्यायालय द्वारा अनिल कुमार नियोतिया बनाम भारत संघ, एआईआर 1988 एससी 1353 में बताया गया था कि उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के निर्णय की तथ्यता पर सवाल नहीं उठा सकता है, भले ही उच्च न्यायालय के समक्ष मांगे गए बिंदु पर उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया हो। "

(12) संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य (2014) 16 एससीसी 623, (पैराग्राफ 20) में, मिसाल के सिद्धांत पर चर्चा करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने "उच्च न्यायालयों सहित सभी न्यायालयों को लाभकारी स्पष्ट चेतावनी" दी। उच्चतम न्यायालय के निर्णय को गलत ठहराने के लिए निष्कर्ष निकालने में बेहद सावधान और सतर्क रहें।" इसी तरह, दक्षिण मध्य रेलवे कर्मचारी सहकारी क्रेडिट सोसायटी कर्मचारी संघ बनाम बी. यशोदाबाई, (2015) 2 एससीसी 727 में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एक निर्णय को रद्द कर दिया:

> "14. हमारा विचार है कि दक्षिण मध्य रेलवे कर्मचारी सहकारी समिति में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विचार करना उच्च न्यायालय के लिए खुला नहीं था। क्रेडिट सोसायटी कर्मचारी संघ बनाम सहकारी रजिस्ट्रार सोसाइटीज [दक्षिण मध्य रेलवे कर्मचारी सहकारी समिति क्रेडिट सोसायटी कर्मचारी संघ बनाम सहकारी रजिस्ट्रार सोसाइटीज़, (1998) 2 एससीसी 580: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 703] प्रति-इंक्यूरियम था।
>
> 15. यदि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए विचार को स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारी राय में, इस देश में पूरी तरह से अराजकता हो जाएगी क्योंकि उस स्थिति में इस न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश को अंतिम रूप नहीं दिया जाएगा। जब एक उच्च न्यायालय ने कोई विशेष निर्णय दिया है, तो उक्त निर्णय का अधीनस्थ या निचली न्यायालय द्वारा पालन किया जाना चाहिए, जब तक कि इसे प्रतिष्ठित या खारिज या रद्द नहीं किया जाता है। उच्च न्यायालय ने कई प्रावधानों पर विचार किया था, जो उसकी राय में, 1988 के सीए नंबर 4343 क्रेडिट सोसायटी कर्मचारी संघ बनाम सहकारी रजिस्ट्रार सोसाइटीज़, (1998) 2 एससीसी 580] [साउथ सेंट्रल रेलवे एम्प्लॉइज कॉप।] पर निर्णय लेते समय इस न्यायालय के समक्ष विचार या बहस नहीं की गई थी। यदि वादियों या अधिवक्ताओं को यह तर्क देने की अनुमति दी जाती है कि जो कुछ सही था, लेकिन पहले उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क नहीं दिया गया था और उस आधार पर यदि नीचे की न्यायालयों को किसी मामले में एक अलग दृष्टिकोण लेने की अनुमति दी जाती है, तो संभवतः संपूर्ण कानून के संबंध में मिसालों और अनुपात निर्णयों को फिर से लिखना होगा और, हमारी राय में, ऐसा नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का पालन न करके उच्च न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रावधानों का भी उल्लंघन करेंगे।"

(13) तात्कालिक मामला कांस्टेबल के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति के संबंध में मुकदमेबाजी का दूसरा दौर है। मुकदमेबाजी के पहले दौर में, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 3364/1998 में, इस न्यायालय की एकलपीठ ने प्रत्यर्थीगण को दिनांक

10.12.1998 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को नियुक्त करने के निर्देश के साथ उक्त याचिका की अनुमति दी थी। एकलपीठ के उक्त आदेश के विरूद्ध प्रत्यर्थीगण ने खंडपीठ के समक्ष विशेष अपील (रिट) संख्या 515/2019 दायर की और उक्त विशेष अपील 9.7.2001 को खारिज कर दी गई। खंडपीठ के आदेश के खिलाफ, प्रत्यर्थीगण ने माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष सिविल अपील संख्या 782/2004 दायर की और माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उक्त अपील के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थीगण ने 22.11.2002 को याचिकाकर्ता को नियुक्ति की पेशकश की। अंततः अपील की अनुमति दी गई और इस न्यायालय की एकलपीठ और खंडपीठ द्वारा पारित आदेशों को 10.12.2009 को रद्द कर दिया गया और तदनुसार याचिकाकर्ता का नियुक्ति आदेश 3.6.2010 को रद्द कर दिया गया। एक बार जब माननीय उच्चतम न्यायालय ने याचिकाकर्ता को नियुक्ति न देने के मुकदमे के पहले दौर पर मुहर लगा दी है और तदनुसार याचिकाकर्ता का आदेश रद्द कर दिया है, तो याचिकाकर्ता का नियुक्ति रद्द करने के अपने आदेश को चुनौती देने का यह दूसरा दौर अनुमति योग्य नहीं है। न्यायिक औचित्य और मर्यादा की मांग है कि देश के उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। इस मुद्दे से निपटते हुए "क्या देश के उच्च न्यायालय द्वारा कहे गए अंतिम शब्द को प्रभावी किया जाना चाहिए?", इस न्यायालय के पास रामनारायण और अन्य बनाम महावीर और अन्य [खंडपीठ" के मामले में इस मुद्दे को तय करने का अवसर था। सी.आर.एल. विविध. (याचिका) संख्या 99/2023 दिनांक 17.1.2023 को निर्णय लिया गया], पैरा 18 से 23 निम्नानुसार है:-

> "(18) एक बार जब माननीय उच्चतम न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मुकदमे के पहले दौर पर मुहर लगा दी है तो उन्हीं याचिकाकर्ताओं द्वारा मुकदमे के दूसरे दौर की अनुमति नहीं है। इस प्रकार अंतिमता के सिद्धांत को सख्त कानूनी अर्थ में लागू किया जाना चाहिए। न्यायिक औचित्य और मर्यादा की मांग है कि देश की उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
>
> (19) एम. नागभूषण बनाम कर्नाटक राज्य (2011) 3 एससीसी 408 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि रेस ज्यूडिकाटा का सिद्धांत एक तकनीकी सिद्धांत नहीं है, बल्कि एक मौलिक सिद्धांत है जो कानून के शासन को सुनिश्चित करता है। मुकदमेबाजी में अंतिमता सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य न्याय के निष्पक्ष प्रशासन को बढ़ावा देना और उन मुद्दों पर न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना है जो पार्टियों के बीच अंतिम हो गए हैं। यह सिद्धांत दो सदियों पुराने सिद्धांतों पर आधारित है,

अर्थात्, *ब्याज रिपब्लिका उट सिट फिनिस लिटियम* जिसका अर्थ है कि यह राज्य के हित में है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए और दूसरा सिद्धांत है निमो डिबेट बिस वेक्सारी, सी कॉन्स्टैट क्यूरीए क्वॉड सिट प्रो यूना एट ईडेम कॉसा का अर्थ है कि किसी भी मुकदमे में किसी को भी दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए यदि यह न्यायालय को लगता है कि यह एक और एक ही कारण के लिए है।

(20) इस प्रकार, मुकदमेबाजी की अंतिमता का सिद्धांत सार्वजनिक नीति के एक ठोस दृढ़ सिद्धांत पर आधारित है। ऐसे सिद्धांत के अभाव में कानून के रंग और दिखावे के तहत बड़ा उत्पीड़न हो सकता है, यहां तक कि मुकदमेबाजी का कोई अंत नहीं होगा। ऐसी अराजकता को रोकने के लिए न्यायिक निर्णय का सिद्धांत विकसित किया गया है।

(21) कानून के शासन द्वारा शासित देश में, निर्णय की अंतिम परिणति बिल्कुल अनिवार्य है और निर्णय की अंतिम परिणति के साथ बड़ी पवित्रता जुड़ी होती है और यह पक्षों के लिए न्यायालय के निष्कर्षित निर्णयों को फिर से खोलने की अनुमति नहीं है। यह स्टेयर डेसिसिस के सिद्धांत को भी रद्द कर देगा, जो मिसाल का एक सुस्थापित मूल्यवान सिद्धांत है जिसे तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक ऐसा करने के लिए मजबूर करने वाली परिस्थितियाँ न हों। न्यायालय और विशेष रूप से किसी देश की उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को हल्के में नहीं लिया जा सकता और न ही हटाया जाना चाहिए।

(22) <u>भारत संघ और अन्य बनाम मेजर एस.पी. शर्मा और अन्य</u> (2014) 6 एससीसी 351 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 83 से 88 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:-

> 83. मिसाल कानून को पूर्वानुमेय रखता है और इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून, देश का कानून होने के नाते, संविधान के अनुच्छेद 141 के मद्देनजर भारत में सभी न्यायालयों/न्यायाधिकरणों और प्राधिकरणों पर बाध्यकारी है। न्यायिक प्रणाली "केवल तभी काम करती है जब किसी को अंतिम शब्द कहने की अनुमति दी जाती है" और बोला गया अंतिम शब्द स्वीकार किया जाता है और उसका धार्मिक रूप से पालन किया जाता है। निर्णायक निर्णय का सिद्धांत न्यायिक निर्णयों में निश्चितता और निरंतरता को बढ़ावा देता है और इससे कानून के विकास में मदद मिलती है। व्यक्तियों के लिए दिशानिर्देश प्रदान करने के अलावा कि यदि वह कानूनी कार्रवाई चुनता है तो उसके परिणाम क्या होंगे, यह सिद्धांत न्यायिक प्रशासन की प्रणाली में लोगों के विश्वास को बढ़ावा देता है। अन्यथा भी अनिश्चितता और भ्रम से बचना एक अनिवार्य आवश्यकता है। न्यायिक औचित्य और मर्यादा की मांग है कि देश के उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
>
> 84. *रूपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा और अन्य* एआईआर

2002 एससी 1771 में, इस न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटा और माना कि इस न्यायालय के निर्णय पर पुनर्विचार, जो अंतिम रूप ले चुका है, सामान्य रूप से स्वीकार्य नहीं है। इस न्यायालय द्वारा दिए गए कानून के प्रश्न पर निर्णय निर्णायक था और यह न्यायालय को बाद के मामलों में बाध्य करेगा। न्यायालय अपने ही निर्णय के खिलाफ अपील नहीं कर सकती।

85. *मगनलाल छगनलाल (पी) लिमिटेड बनाम ग्रेटर बॉम्बे नगर निगम* एआईआर 1974 एससी 2009 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

> "22. ...साथ ही, यह ध्यान में रखना होगा कि निश्चितता और निरंतरता कानून के शासन के आवश्यक तत्व हैं। यदि देश की उच्चतम न्यायालय पहले के मामलों में व्यक्त दृष्टिकोण को आसानी से खारिज कर देती है, तो कानून में निश्चितता काफी हद तक खत्म हो जाएगी और गंभीर झटका लगेगा, भले ही वह दृष्टिकोण कई वर्षों से इस क्षेत्र में कायम है। इस न्यायालय के समक्ष आने वाले बहुत से मामलों में, दो दृष्टिकोण संभव हैं, और केवल इसलिए कि न्यायालय का मानना है कि पिछले मामले में न्यायालय द्वारा नहीं लिया गया दृष्टिकोण मामले का बेहतर दृष्टिकोण था, इसलिए निर्णय को पलटना उचित नहीं होगा। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत देश की सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी है, और पूरे देश में कई मामलों का निर्णय इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के अनुसार किया जाता है। बहुत से लोग अपने मामलों की व्यवस्था करते हैं और बड़ी संख्या में लेन-देन भी इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की सत्यता के विश्वास पर होते हैं। यदि इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून, जिसके आधार पर कई मामलों का निर्णय किया गया है और कई लेनदेन हुए हैं, सही कानून नहीं है, तो इससे अनिश्चितता, अस्थिरता और भ्रम पैदा होगा।"

इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह माना जा सकता है कि अंतिमता के सिद्धांत को सख्त कानूनी अर्थ में लागू किया जाना चाहिए।

86. इस मुद्दे से निपटते समय यह न्यायालय अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम यूपी राज्य एआईआर 1980 एससी 1762, में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "6. यह याद रखना बुद्धिमानी है कि पहले के निर्णयों द्वारा खामोश कर दी गई घातक खामियां मृत्यु के बाद जीवित नहीं रह सकतीं क्योंकि कोई निर्णय अपना अधिकार नहीं खो देता है 'केवल इसलिए कि उस पर बुरी तरह से तर्क दिया गया, अपर्याप्त रूप से विचार किया गया और गलत तरीके से तर्क दिया गया।'

87. यह विचार इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिनांक 23.4.2003 के आदेश द्वारा सुभाष जुनेजा और हरीश लाल सिंह की विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करते हुए व्यक्त किया गया है [सुभाष जुनेजा बनाम भारत संघ (2006) 14 एससीसी 384]। इस न्यायालय ने निर्णय की अंतिमता और पुनर्न्याय के सिद्धांत को लागू किया और इन कार्यवाही को फिर से खोलने से इनकार कर दिया।

88. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्रीमती किरण सूरी ने मथुरा प्रसाद बाजू जयसवाल और अन्य वी. डोसीबाई एन.बी. जीजीभॉय (1970) 1 एससीसी 613 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भारी भरोसा जताया। इस प्रस्ताव के लिए कि किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित प्रश्न को अंततः न्यायालय के एक गलत निर्णय द्वारा निर्धारित नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा एक गलत निर्णय के द्वारा यदि न्यायालय उस क्षेत्राधिकार को फिर से शुरू कर देती है जो उसके पास क़ानून के तहत नहीं है, तो यह प्रश्न समान पक्षों के बीच न्यायिक निर्णय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है कि क्या बाद की मुकदमेबाजी में कार्रवाई का कारण समान है या अन्यथा। हमारी राय में, उपरोक्त निर्णय प्रत्यर्थी के लिए कोई मददगार नहीं है क्योंकि इस सरल कारण से कि वर्तमान मामले और मुकदमेबाजी के पहले दौर में शामिल तथ्य और कानून समान हैं। उपरोक्त निर्णय के पैरा 5 में, इस न्यायालय ने सिद्धांत निर्धारित किया है, जो इस प्रकार है:

> 5. लेकिन रेस ज्यूडिकाटा का सिद्धांत प्रक्रिया के क्षेत्र से संबंधित है: इसे पार्टियों के बीच एक विधायी निर्देश की स्थिति तक नहीं बढ़ाया जा सकता है ताकि अंततः उनके बीच एक न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करने वाले अधिनियम की व्याख्या से संबंधित प्रश्न का निर्धारण किया जा सके, भले ही तथ्य का कोई प्रश्न या कानून और तथ्य का मिश्रित प्रश्न और पक्षों के बीच विवाद में अधिकार से संबंधित कोई प्रश्न निर्धारित नहीं किया गया है। किसी विवादग्रस्त मामले पर सक्षम न्यायालय का निर्णय समान पक्षों के बीच किसी अन्य कार्यवाही में न्यायिक हो सकता है: "मुद्दे वाला मामला" तथ्य का मुद्दा, कानून का मुद्दा, या मिश्रित कानून और तथ्य में से एक हो सकता है। तथ्य का मुद्दा या सक्षम न्यायालय द्वारा तय किए गए मिश्रित कानून और तथ्य का मुद्दा अंततः पार्टियों के बीच निर्धारित किया जाता है और किसी अन्य कार्यवाही में उनके बीच दोबारा नहीं खोला जा सकता है। किसी मुद्दे पर पिछला निर्णय ही न्यायिक है: निर्णय के कारण न्यायिक नहीं हैं। पार्टियों के बीच विवादित मामला एक पक्ष द्वारा दावा किया गया अधिकार है और दूसरे द्वारा इनकार किया गया है, और अधिकार का दावा अपनी प्रकृति से तथ्यों के प्रमाण और संबंधित कानून के आवेदन पर निर्भर करता है। किसी अधिकार को जन्म देने वाले तथ्यों से असंबंधित कानून का एक शुद्ध प्रश्न, विवाद का विषय नहीं माना जा सकता है। जब यह कहा जाता है

> कि पिछला निर्णय न्यायिक है, तो इसका मतलब यह है कि दावा किए गए अधिकार पर निर्णय हो चुका है और उसे दोबारा उन्हीं पार्टियों के बीच मुकाबले में नहीं रखा जा सकता है। तथ्यों पर एक सक्षम न्यायालय का पिछला निर्णय जो अधिकार की नींव है और लेनदेन के निर्धारण के लिए लागू प्रासंगिक कानून जो अधिकार का स्रोत है, न्यायिक है। किसी मुद्दे पर पिछला निर्णय एक समग्र निर्णय है: कानून पर निर्णय उन तथ्यों पर निर्णय से अलग नहीं किया जा सकता है जिन पर अधिकार आधारित है। कानून के किसी मुद्दे पर निर्णय उन्हीं पक्षों के बीच बाद की कार्यवाही में न्यायिक आधार पर होगा, यदि बाद की कार्यवाही में कार्रवाई का कारण पिछली कार्यवाही के समान हो, लेकिन तब नहीं जब कार्रवाई का कारण अलग हो, न ही जब किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पिछले निर्णय के बाद से कानून को बदल दिया गया हो, न ही जब निर्णय पिछली कार्यवाही की कोशिश करने के लिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित हो, न ही जब पहले का निर्णय किसी लेनदेन को वैध घोषित करता हो जो कानून द्वारा निषिद्ध है।
>
> (23) इस प्रकार, यह सुस्थापित कानून है कि पार्टियों के लिए निष्कर्ष निकाले गए निर्णयों को दोबारा खोलने की अनुमति नहीं है क्योंकि यह न केवल कानून और न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान हो सकता है बल्कि न्याय प्रशासन पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।"

किसी न्यायिक निर्णय की पहचान उसकी स्थिरता और अंतिमता है। यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है *"किसी को अप्रत्यक्ष रूप से कुछ भी करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो वह सीधे नहीं कर सकता"*। इस याचिका में स्पष्ट रूप से माननीय उच्चतम न्यायालय के दिनांक 10.12.2009 के निर्णय में ठोस संशोधन की मांग की गई है, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति 3.6.2010 को रद्द कर दी गई है। किसी भी कानून के तहत इस तरह के प्रयास की अनुमति नहीं है.

(14) अब इस न्यायालय के सामने अगला सवाल यह है कि जब 113 समान स्थिति वाले व्यक्तियों को प्रत्यर्थीगण द्वारा नियुक्ति दी गई है जिनके खिलाफ आपराधिक मामले भी दर्ज किए गए थे, तो क्या याचिकाकर्ता भी उस पद पर बने रहने का हकदार है जिस पर उसे नियुक्ति दी गई थी? यह अच्छी तरह से तय है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए रिट न्यायालय नकारात्मक समानता के आधार पर या कानून के विपरीत कार्य करने या अवैधता को कायम रखने के लिए रिट जारी नहीं करेगी। केवल इसलिए कि समान स्थिति वाले व्यक्तियों को नियुक्ति की पेशकश

की गई और पद पर बने रहने की अनुमति दी गई, याचिकाकर्ता समानता के आधार पर बने रहने का हकदार नहीं बन जाता है और नकारात्मक समानता बनाए रखने के लिए कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की दलील को नकारात्मक समानता का दावा करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है, जैसा कि यहां दावा करने की मांग की गई है। एक गलत कार्य को समानता का दावा करने के लिए प्राथमिकता के रूप में उद्धृत नहीं किया जा सकता है और न ही यह याचिकाकर्ता जैसे समान स्थिति वाले व्यक्तियों के पक्ष में कोई अधिकार बनाता है।

(15) इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के वैकल्पिक तर्क में कोई बल नहीं मिला कि याचिकाकर्ता को कांस्टेबल के पद पर बने रहने के लिए सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है। याचिकाकर्ता के खिलाफ माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विपरीत याचिकाकर्ता को राहत देने के लिए केवल सहानुभूति ही आधार नहीं हो सकती। यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि जो सहानुभूति कानून के दायरे में नहीं है, वह कुछ ऐसा देने का आधार नहीं हो सकती जो अन्यथा अस्वीकार्य है। याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर उसे नहीं दी जा सकती। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा बताए गए निर्णय इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं।

(16) मौजूदा चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाती है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है। कोई लागत नहीं।

स्थगन आवेदन और सभी आवेदन, यदि कोई लंबित हैं, भी खारिज किए जाते हैं।

(अनूप कुमार ढांड), न्यायमूर्ति

.db/

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।